गत शताब्दी तक हिन्दी – एक मूल्यांकन

डॉ. विद्यानन्द पाण्डेय
बी.टी.टी.सी. गांधी विद्या मन्दिर, सरदारशहर

सार:

महाराष्ट्र एवं वर्धा की इस पावन धरा को प्रणाम, जहां से गांधी चिन्तन ने शिक्षा जगत में नई प्राणप्रतिष्ठा पाई और अपनी मातभाषा के प्रति समर्पण तथा आस्था का एक धरातल तैयार हुआ। भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में 1937 में बुनियादी शिक्षा समिति की सम्पूर्ण योजना यहीं से तैयार हुई थी जिसमें बालकों को दी जाने वाली शिक्षा का माध्यम हिन्दी स्वीकार किया गया था। इस संकल्प के पीछे भारतीय स्वतंत्रता प्राप्त करने की दूरदर्शी नीति भी थी। गांधी जी जानते थे कि अशिक्षा स्वतंत्रता प्राप्ति के मार्ग का सबसे बड़ा अवरोध है इसलिये वे मातृभाषा हिन्दी के माध्यम से शिक्षा देकर अंग्रेजों के प्रति तथा अंगेजी भाषा के प्रति वितष्णा पैदा करना चाहते थे और उसमें उन्हें पूर्ण सफलता भी मिली।

प्रस्तावना

यह सोच और उदात्त चिंतन कोई नया नहीं था। इस कार्य में अनेक कवियों, लेखकों, साहित्यकारों ने लगभग एक सहस्राब्दी का समय निकाला। तब से अब तक राष्ट्र भाषा या मातृभाषा के रूप में हिन्दी का स्तवन किया जा रहा है। सम्भवतः अभी भी हम अपने लक्ष्य से दूर है।

आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल तक राजप्रासादो, मन्दिरों, उपासनागृहों में केवल चारण गाथा तथा प्रस्तति तक ही इसका प्रयोग होता रहा है। यद्यपि उद्भव से उत्कर्ष काल तक इसमें लिखा गया साहित्य आज की तुलना में अधिक उच्च कोटि का था परन्तु रीति काल के बाद इसे एक समृद्ध भाषा की जगह राष्ट्रीय एकता और अस्तित्व को सुरक्षित रखने के साधन के रूप में अधिक प्रयोग किया गया। इतिहास की दृष्टि से देखे तो 12वीं शताब्दी में ही अमीर खुसरों ने कह दिया था ''देश के भविष्य की भाषा वह है जिसमें खुसरो लिखता है।'' यह बताने की आवश्यकता नहीं कि आज भी अमीर खुसरों की कहानियां, नीतियां तथा पहेलियां हिन्दी भाषियों में खूब पढ़ी और सुनी तथा समझी जाती है।

1615 ई. में एडवर्ड टेरी ने लिखा था ''हिन्दुस्तानी इण्डिया की भाषा है जिस पर अरबी और फारसी का असर है।'' 1750 ई. के शाहआलम की पुस्तक 'दिवानजारे' में यह उल्लेख मिलता है – ''मैंने हिन्दुस्तान के तमाम सूबो की जुबान हिन्दी को ही अपनी तकदीर के लिए चुना है।'' उक्त दोनों सन्दर्भ हिन्दी की लोकप्रियता, सरलता

सम्प्रेषणीयता को सुदृढ आधार प्रदान करते है। 1807 में मद्रास के लेफ्टीनेन्ट टामसरोबक ने अपने शिक्षक को एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने कहा था ''भारत के जिस हिस्से में मुझे काम के सिलसिले में जाना पड़ा वहां मैने हिन्दुस्तानी भाषा का प्रभाव देखा।'' हिन्दी भाषा की राष्ट्रीय व्यापकता के परिप्रेक्ष्य में ऐसा ही कथन महान् इतिहासकार जार्ज ग्रियर्सन का है जिन्होंने कहा था ''बिहार से हरियाणा तक फैली हुई एक भाषा के प्रभाव को मैने स्वीकार किया जिसे हिन्दी, हिन्दवी, या हिन्दुस्तानी कहा जा सकता है।''

सन् 1875 में बंगलाभाषी केशवचन्द सेन ने कहा था ''हिन्दी को यदि भारत की राष्ट्र भाषा स्वीकार कर लिया जाय तो सहज ही राष्ट्रीय एकता स्थापित हो जायेगी।'' ऐसे अनेक कथन, उद्वरण तथा सात्विक प्रयासों की कमी नहीं है जिसमें हिन्दी को राष्ट्रीय गौरव तथा राष्ट्र भाषा के रूप में प्रतिस्थापित करने का प्रयास न किया गया हो परन्तु आज की संगोष्ठी और ऐसे सम्मेलन इस बात के साक्ष्य है कि अभी भी वैश्विक स्तर पर हिन्दी की मर्यादा स्वीकार करने में कोई कमी है। स्वतंत्रता से पूर्व हिन्दी को राष्ट्र भाषा की तस्वीर के रूप में आजाद हिन्द सरकार ने प्रस्तुत किया था जिसके लिए अलग–अलग विभाग और उत्तरदायित्व निर्धारित किये गये थे जिसके अध्यक्ष श्री हेमराज शास्त्री थे। उस समय हिन्दी के प्रति एक राष्ट्रीय मोह और लगाव दिखाई दिया। द्वितीय विश्व युद्ध के ठीक पहले मद्रास की बागडोर संभालते हुए श्री राजगोपालाचारी ने कहा था ''भारत के अधिकांश भाग में बोली जाने वाली हिन्दी का कामचलाऊ ज्ञान मद्रास के विद्यार्थियों को भी होना चाहिए जिससे वे उत्तर से सुविधापूर्वक विचार विनिमय कर सके और हिन्दी का गम्भीर ज्ञान प्राप्त करना शिक्षा का उद्देश्य भी होना चाहिए।''

स्वतंत्रता के बाद हमें विश्वास हो गया था की भारत की राज भाषा हिन्दी हो जायेगी और संविधान के प्रावधानों में इसे राजभाषा तो घोषित कर दिया गया था लेकिन यदि वह निर्विवाद राष्ट्र भाषा मान ली जाती तो हमें इस पुरानी समस्या का नया रूप देखने को नहीं मिलता। तब से लेकर अब तक हिन्दी के समथन में कई बार भागीरथ प्रयास किये गये। हमारे मनस्वियों की सम्मतियां, संस्तुतियां सामने आइ, आंदोलन तथा अभियान भी चलाये गये परन्तु संतुष्टिपरक मूल्यांकन मे हम पिछड़ गये ।

ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त नरेश मेहता ने कहा था ''गणतंत्र की स्थापना के साथ हिन्दी को राज भाषा तो मान लिया गया था लेकिन इसे लागू करने के लिए 15 वर्ष का समय मांगना ही अनुचित रहा। यह मांग राज्य और शासन में बेठे अभारतीय मानसिकता वालों के लिए महत्त्वपूर्ण हो गया। यह राष्ट्र भाषा की संज्ञा को भ्रामक बना देता है। राष्ट्र भाषा के प्रश्न से हिन्दी बनाम अन्य भारतीय भाषाओं के बीच

विरोध एवं विद्वेष हो गया'' परन्तु मेहताजी की इस पीड़ा को अभी भी समझा नहीं जा रहा है और राज्य, क्षेत्र और जनपद के भारतीय भूगोल की संस्कृति में इसके एकता के पावन इतिहास को राष्ट्रीय स्तर पर खड़ा नहीं होने दिया जा रहा है। हमें समझना चाहिए कि बंगलाभाषी बंकिमचन्द्र चटर्जी ने कहा था 'हिन्दी के माध्यम से जो लोग भारत में ऐक्य स्थापित कर सकेंगे, वे ही प्रकृत बंधु कहलाने योग्य हैं। हिन्दी के माध्यम से भारत के अधिकांश स्थानों का मंगल साधन कीजिए। केवल बंगला या अंग्रेजी से हो काम नहीं चलेगा।'' वास्तव में भारत राष्ट्र की चेतना का मूल स्वर हिन्दी भाषा का है और वस्तुतः इसी मंगल साधना का संकेत बंकिम जी ने किया था।

गुजरातीभाषी संत विनोबा भावे जी ने कहा था 'मैं दुनियाँ की सब भाषाओं की इज्जत करता हूँ परन्तु मेरे देश में हिन्दी की इज्जत न हो यह मैं नहीं सह सकता।' विनोबाजी जैसे महापुरूष और देशभक्त की यह वेदना आज तक उन भारतीयों के मानस में द्वेलन पैदा नहीं कर सकी जो अंग्रेजी भाषा को बंदरिया के मरे बच्चे की तरह सीना से लगाये बैठे हैं। गुजराती भाषी होते हुए स्वयं गांधीजी ने कहा था 'जो स्थान इस समय अंग्रेजी भोग रही है वह हिन्दी को मिलना चाहिए। इस विषय पर मतभेद का कारण न होने पर भी मतभेद है यह दुर्भाग्यपूर्ण है.....। शिक्षित वर्ग की एक भाषा होनी चाहिए, वह हिन्दी है.....। हमारे हाथ में सत्ता हो तो मैं विदेशी भाषा के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा बंद कर दूं। मैं शिक्षकों और प्रोफेसरों से या तो वह माध्यम बदलवा दूं या उन्हें बर्खास्त कर दूं। मैं पाठ्यपुस्तक की तैयारी का इंतजार नहीं करूंगा। वे तो माध्यम होती हैं.....। अंग्रेजी ने शिक्षित भारतीयों को निर्बल और कमजोर बना दिया, बच्चों को नकलची बना दिया। कोई देश नकलची की जाति पैदा कर राष्ट्र नहीं बन सकता.....। अंग्रेजी के मोह से छुटकारा पाना स्वराज्य प्राप्ति की एक अत्यन्त आवश्यक शर्त है।' उन्होंने यह भी कहा था 'समूचे हिन्दुस्तान के साथ व्यवहार के लिए ज्यादा तादाद में एक भाषा बोलने वाले लोग हों। कम बचे हुए लोग बाद में स्वयं सीख लेंगे। इसमें शक नहीं कि हिन्दी ऐसी ही भाषा है जिसे हिन्दू मुसलमान दोनों ही बोल सकते हैं।'

गांधी जी की यह भावना एक भाषा की नहीं अपितु भारतीय राष्ट्रीय स्वाभिमान और उसके अस्तित्व की उपासना से जुड़ा हुआ था, इसलिए उन्होंने किसी भाषा का विरोध न कर राष्ट्रीय अस्मिता के संरक्षण का आग्रह किया था। उन्होंने कहा था ''मैं अग्रेजी भाषा का विरोधी नहीं हूं परन्तु इसके माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा का विरोधी हूं जो बालकों मं जंगली संस्कार पैदा करती है। महान् भाषाविद् सुनीत कुमार चटर्जी स्वयं बंगलाभाषी होते हुए हिन्दी के प्रवल पक्षधर थे जिन्होंने कहा था ''राष्ट्रीय एकता के प्रतीक स्वरूप एक भाषा माने बिना कार्य नहीं चल सकता। हिन्दी की प्रतिष्ठा सर्वत्र दीख पड़ती है। हम सब का अंतःप्रान्तीय काम काज राष्ट्र भाषा

हिन्दी में हो सकता है।'' यह विचार भी राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी को ही स्वीकार करता है। गांधी जी, स्वामी दयानन्द सरस्वती गुजरातीभाषी होते हुए भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा और आर्यभाषा की संज्ञा देने वाले हुए और दोनों ने स्वीकार किया था कि हिन्दी में विचारविनिमय करना देश के लिए हितकर है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर, सुभाषचन्द्र बोस, केशवचंद सेन, सुब्रह्मणियम भारती, राजगोपालाचारी , गांधी जी, तिलक, दयानन्द सरस्वती, लाजपतराय आदि अहिन्दी भाषी मनीषियों ने इसके राष्ट्रीय महत्व और समर्थन का स्तुत्य प्रयास किया था। गांधी जी ने भारतीय जनजीवन, संस्कृति, परम्परा और यहां की मिट्टी पानी को पहचाना था और कहा था'' मैं आज के विद्यार्थी को कहना चाहूंगा कि वह अपने शिक्षक से कहे कि हमें हमारी मातृभाषा में पढ़ाओं, हम हिन्दुस्तानी है हमें ऐसो जबान मं पढ़ाओं जो हमारे हिन्दुस्तान में समझी जा सके। ऐसी जबान हिन्दुस्तानी ही हो सकती है।'' गांधी जी ने इसी हिन्दुस्तानी को हिन्दी के रूप में स्वीकार किया था और कहा था ''एक सूत्र में पिरोने के लिए सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी ही उपयोगी भूमिका का निर्वाह कर सकती हैं। यह हमारी सांस्कृतिक एकता का सेतु रही है।''

पण्डित जवाहर लाल नेहरू की शिक्षा–दीक्षा और उनके विचारों पर अंग्रेजी का प्रभाव कम नहीं पड़ा था परन्तु राष्ट्रीय स्वाधीनता और मातृभाषा का प्रश्न खड़ा होते ही उन्होनें समस्त भाषायी आभिजात्य से उत्पन्न प्रतीकां का त्याग कर दिया और कहा था ''मेरा सिर शर्म से तब झुक जाता है जब एक भारतीय दूसरे भारतीय से विदेशी भाषा में बात करता है.....। हम जितनी जल्दी अग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को बैठा देगें उतना ही अच्छा होंगा। देर करने से देश–विदेश में बदनामी होगी। 19वीं शताब्दी में हमारे देश में अंग्रेजी मनीषियों की एक नई जाति बन गई जिसने राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन में नितान्त स्वार्थी बनकर भारत को हानि पहुंचाई। मेरा दृढ़ मत है कि अंग्रेजी के प्रति मनोवैज्ञानिक लगाव अब खत्म होना चाहिए।''

स्वतंत्रता के बाद भी हिन्दी अपनी उस पद प्रतिष्ठा से वंचित होती लग रही है जो उसे साधिकार मिलना चाहिए था। हमारे पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने कहा था ''स्वतंत्रता के बाद हमने लोकतंत्र अपनाया इसलिए राष्ट्रभाषा की अनदेखी कदापि नहीं होनी चाहिए। राजभाषा को लोकतांत्रिक बनानें की जरूरत है। इसके लिए मौलिक हिन्दी में काम करना होगा।'' कुछ ऐसी ही विचारधारा के पोषक थे हमारे पूर्व राष्ट्रपति श्री बी.डी. जत्ती, जिन्होनें कहा था हिन्दी हमारी सांस्कृतिक, सामाजिक एवं भावात्मक एकता की प्रतिनिधि भाषा है। यह हमारे राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक है जिसका भविष्य उज्ज्वल है। हिन्दी के प्रति सभी देशवासियों को उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। संविधान द्वारा स्वीकृत राष्ट्रभाषा का सम्मान करना हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य है।''

डेढ़ हजार वर्षों से निरन्तर भारत के जनमानस को शैत्य एवं पावनत्व प्रदान करने वाली राष्ट्रभाषा हिन्दो के सामने सबसे बड़ा जटिल प्रश्न यह है कि हिन्दी संविधान में राजभाषा तो बन गई है पर राष्ट्रभाषा की स्वीकृति न तो संवैधानिक रूप में मिली न व्यावहारिक रूप में मिली। इसीलिए साहित्यकार शैलेश मटियानी ने कहा था ''संविधान में राजभाषा का पद हिन्दी को और अधिकार अंगेजी को दे दिया गया।'' हिन्दी को राजभाषा या राष्ट्रभाषा का पद या अधिकार मिले न मिले यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना महत्वपूर्ण है इसको अपने जीवन दर्शन का अंग बनाना। इसको श्रद्धास्पद स्थान स्वतंत्रता से पूर्व कम नहीं मिला था परन्तु स्वतंत्रता के बाद भारत में अंग्रेजी का विरोध भले हुआ हो पर व्यावहारिक रूप से बात कुछ ओर ही है। आज देखने की जरूरत है कि गांधी जी की कल्पना में बसने वाले रामराज्य की पाठशालाओं से बेसिक पद्धति के छात्र अधिक लाभान्वित है या अंग्रजी भाषी कान्वेन्ट और पब्लिक स्कूलों के बहुमूल्य इमारतों में ऊंची फीस देकर अध्ययन करने वाले अंगेजी भाषी बालक।